दिसम्बर २०१६

कीमत ₹ १२/-

दादा भगवान परिवार का

अक्रम एक्सप्रेस

बड़ा मन

संपादक :
डिम्पल मेहता
वर्ष : ४ अंक : ९
अखंड क्रमांक : ४५
दिसम्बर २०१६

संपर्क सूत्र
बालविज्ञान विभाग
त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी,
अहमदाबाद - कलोल हाइवे,
मु.पो. - अडालज,
जिला . गांधीनगर - ३८२४२१, गुजरात
फोन : (०७९) ३९८३०१००
email:akramexpress@dadabhagwan.org
Website: kids.dadabhagwan.org

Printed & Published by

Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
5, Mamtapark Society,
Bh.Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

Owned by
Mahavideh Foundation
5, Mamtapark Society,
Bh.Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

Printed at
Amba Offset
Basement, Parshvanath
Chambers, Nr.RBI,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

Published at
Mahavideh Foundation
5, Mamtapark Society,
Bh.Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

वार्षिक सदस्यता(हिन्दी)
भारत :१२५ रुपये
यू.एस.ए. :१५ डॉलर
यू.के. :१० पाउन्ड
पाँच वर्ष
भारत : ५०० रुपये
यू.एस.ए. : ६० डोलर
यू.के. : ४० पाउन्ड
D.D/ M.O 'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम पर भेजें।

बड़ा मन

संपादकीय

बालमित्रों,

कई बार हम देखते हैं कि हमारा दोस्त अपनी कोई भी चीज़ खुशी-खुशी दूसरों को दे देता है और अगर हमें दूसरों को देना हो तो मन में ज़रा खटकता है, हम दे नहीं पाते। मेरा खर्च हो जाएगा तो, बिगड़ जाएगा तो, मेरे पास कम हो जाएगा तो, वगैरह विचार हमें घेर लेते हैं।

कभी सोचा है कि ऐसा क्यों होता है? जो उदारता से दे सकते हैं या दूसरों के लिए खर्च कर सकते हैं, वे इंसान कैसे होंगे? देने के बाद वास्तव में क्या उनके पास कम हो जाता है या उन्हें उसकी कमी महसूस होती है?

तो आइए, आज इस अंक में हम इसका रहस्य जानें और हम भी दूसरों को अपनी चीज़ें देने की हिम्मत करें।

-डिम्पल मेहता

अक्रम एक्सप्रेस

ज्ञानी कहते हैं...

प्रश्नकर्ता : नीरू माँ, मेरी एक फ्रेन्ड है, मैं हमेशा उसे अपनी सभी चीज़ें देती हूँ, लेकिन वह मुझे कभी भी अपनी चीज़ नहीं देती। मेरी दूसरी फ्रेन्ड हमेशा मुझसे कहती है कि तुझे भी उसे एक भी चीज़ नहीं देनी चाहिए। फिर भी जब उसे चाहिए तब मैं उसे दे देती हूँ, तो मुझे क्या करना चाहिए?

नीरू माँ : तुझे देने का मन होता है?

प्रश्नकर्ता : मैं तो उसे हर बार दे ही देती हूँ।

नीरू माँ : दे दे न! हमारा मन बड़ा है तो बड़ा ही रखो न! मन छोटा करने की क्या ज़रूरत है? बड़े मनवाला बनने में तो, कितने ही जन्म लग जाते हैं, तब जाकर मन बड़ा होता है। कितने ही जन्मों तक इस मन को प्रशिक्षित किया जाए तब जाकर मन बड़ा हो पाता है। मन के संकुचित होने में देर नहीं लगती लेकिन बड़ा होने में बहुत देर लगती है। तुझे कुदरती रूप से बड़ा मन मिला है तो उसे बिगाड़ना मत। कोई कहे तो उसकी सुनना मत। दे देकर भी हम क्या दे रहे हैं? हीरे-मोती के गहने तो नहीं दे रहे हैं कि हम लुट जाएँगे? ज्यादा से ज्यादा हुआ तो पेन्सिल देंगे, रबड़ देंगे, बक्कल होगा या फुंदा होगा, ऐसा ही कुछ देते हैं न? देना हं...

समृद्धि किसे मिलती है?

क्या करने से समृद्धि आती है? कई लोगों की हेल्प की जाए, तब अपने यहाँ लक्ष्मी आती है। वह तो देने की इच्छावाले के पास ही आती है, जो सब के लिए करता रहता है, उसके पास आती है।

बड़े मनवाला ही अच्छी तरह से कमा सकता है। जो लेने-देने में बड़ा मन रखता है, वही कमा सकता है। छोटे मनवाला तो कभी नहीं कमा सकता।

जो परिवार के सभी लोगों को
अपना मानकर चलता है,
वह विशाल मनवाला कहलाता है।

२

जहाँ प्रेम होता है वहाँ संकुचितता नहीं होती। जहाँ विशालता होती है, वहाँ मेरा और पराया ऐसा भेद नहीं होता।

यह तो नई

३

बनिया बुद्धिवाले का मन बहुत संकुचित होता है। क्षत्रिय का मन कैसा होता है?... राजा जैसा। मंदिर में जाए तो जेब में हाथ डालकर जितने पैसे निकलें, उतने डाल देता है। फिर वह यह नहीं देखता कि कितने निकले और कितने डाले।

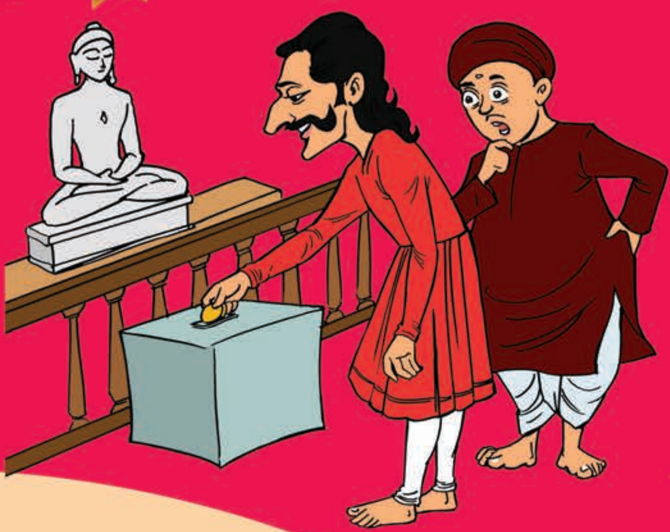

४

बड़े मनवाला शंका नहीं करता। वह हमेशा सभी बातों में पॉज़िटिव रहता है।

ही बात!

चमकीली गेंद

माँ की गोद में सिर रखकर रघु ने कहा, "माँ, उस वीर राजकुमार की कहानी सुनाइए न!"

रोज़ रात को रघु घर के आँगन के झूले पर बैठकर माँ से मज़ेदार कहानियाँ सुनता था। माँ ने प्रेम से रघु के सिर पर हाथ फिराते हुए कहा, "लेकिन बेटा, कल रविवार है। सुबह जल्दी उठना है न? आज जल्दी सो जाओ।" दूसरे दिन का काम याद आते ही रघु ने झट से आँखें बंद कर लीं।

हर महीने के पहले रविवार को रघु पिता जी के साथ जेतपुर जाता था। पिता जी ने रघु से पहली बार अकेले जेतपुर जाने के लिए कहा था। रघु को इस बात की खुशी थी कि पिता जी ने उसे ज़िम्मेदार समझा।

सुबह जल्दी उठकर माँ का दिया हुआ खाना लेकर रघु जेतपुर जाने के लिए निकल गया।

जेतपुर गाँव में प्रवेश करते ही उसे एक खास ठंडक महसूस हुई। गाँव के लोगों की एकता और संतोष रघु को स्पर्श करते जा रहे थे। पिता जी भी हमेशा कहते थे, "जेतपुर गाँव जैसी एकता और कहीं भी देखने नहीं मिलती।"

शंभू चाचा ने रघु को प्रेम से बिठाकर पूछा, "अरे रघु, आ गया बेटा! आज तेरे पिता जी क्यों नहीं दिखाई दे रहे हैं?"

"पिता जी को कुछ काम आ गया था, इसलिए उन्होंने मुझे भेजा है। और अब हर महीने मैं अकेला ही सामान लेकर आऊँगा।", रघु की आवाज़ में, उसे मिली ज़िम्मेदारी के गर्व की खनक थी।

रघु के सिर पर हाथ रखकर, शंभू चाचा ने कहा, "अरे वाह! मेरा बेटा बड़ा हो गया।" रघु मुस्कुराया।

सामान देखकर, शंभू चाचा ने रघु को पैसे दिए। रघु ने संभालकर पैसे जेब में रख दिए और घर जाने के लिए वापस लौटा। वह अपनी ही धुन में गीत गुनगुनाते हुए चल रहा था, तभी उसकी नज़र किसी पर पड़ी।

"यह क्या?" इतनी चमक तो उसने पहले कभी नहीं देखी थी। झाड़ियों के बीच में एक चमकती हुई गेंद पड़ी थी।

"यह कोई भ्रम तो नहीं हैं न?" रघु ने अपनी आँखें मसलीं। देखा तो गेंद उसी जगह पर पड़ी थी। उसने धीरे से गेंद उठाई। गेंद को गोल घुमाया। तभी अचानक गेंद में से एक आवाज़ आई।

"मैं जिसके हाथ में आऊँगी, उसकी एक इच्छा पूरी करूँगी"

"सचमुच?" रघु को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ।

फिर से गेंद में से आवाज़ आई, "हाँ। लेकिन अगले महीने के पहले रविवार तक ही यह संभव है।"

रघु की खुशी का पार नहीं था। उसके मन में तरह-तरह की तरंगे उठने लगीं। उसने संभालकर गेंद थैले में रख दी और वहाँ से चला गया।

छज्जे पर खड़े मोहन ने यह पूरा दृश्य देखा। रघु की बातचीत भी सुनी। मोहन के अचंभे का भी अंत नहीं था।

मोहन को लगा, "यह कैसे संभव होगा।" पता लगाने के लिए वह छुपकर रघु का पीछा करने लगा।

रघु आगे और मोहन पीछे! रघु तो अपनी मस्ती में ही था। "क्या माँगू और

क्या नहीं" उसके मन में यही हलचल चल रही थी।

कुछ दूर जाकर रघु ने पीपल के पेड़ के नीचे चादर बिछाई। माँ के दिए हुए पराँठे और सब्ज़ी खाई और ज़रा आराम करने के लिए लेट गया। उसे पता ही नहीं चला कि कब नींद आ गई। मोहन तो इसी क्षण का इंतज़ार कर रहा था। उसने चालाकी से थैले में से वह चमकीली गेंद निकाल ली और वहाँ से भाग गया।

आँखें खुलते ही रघु को सब से पहले अपनी गेंद याद आई। थैले में देखा तो गेंद गायब! आसपास सभी जगह पर देख लिया लेकिन कहीं नहीं मिली। रघु की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। कुछ देर पहले बाँधा हुआ इच्छाओं का महल चूर-चूर हो गया।

दूसरी तरफ मोहन इस तरह गेंद लेकर भागा, जैसे कोई राजकुमार घोड़े पर सवार हो।

जेतपुर जाकर उसने गाँव के लोगों को इकट्ठा किया और गेंद की खासियत बताई।

मोहन ने कहा, "यह गेंद हर एक की एक इच्छा पूरी करेगी।"

यह कौन मान सकता था? शंभू चाचा को लगा कि मोहन मज़ाक कर रहा है। गेंद हाथ में लेकर शंभू चाचा बोले, "हे गेंद! मुझे एक बोरा भरकर सोने की मोहरें दो।"

तुरंत ही शंभू चाचा की गोद में सोने की मोहर से भरा एक बोरा आ गया! उसके बाद सभी ने अपनी एक-एक इच्छा बताई। किसी ने बड़ा महल माँगा, तो किसी ने हीरे-मोती। सभी की इच्छा पूरी हुई। इस तरह छोटा सा, सीधा-सादा जेतपुर गाँव अचानक समृद्ध हो गया।

शुरू-शुरू में गाँव के लोग नई प्राप्त की हुई संपत्ति से खुश थे, लेकिन धीरे-धीरे एक की संपत्ति देखकर दूसरे को ईर्ष्या होने लगी। महलवालों को सोने की मोहरों का लालच होने लगा और जिसके पास सोने की मोहरें थी उसे हीरे-मोती की इच्छा हुई। अभी तक जिस गाँव की एकता और संतोष की सब तारीफ करते थे, वही गाँव अब ईर्ष्या की अग्नि में जलने लगा।

एक महीना बीत गया। महीने के पहले रविवार को रघु फिर से सामान लेकर शंभू चाचा की दुकान पर आया। गाँव की चमक-दमक देखकर दंग रह गया। लेकिन वह चमक-दमक से इतना दंग नहीं हुआ, जितना गाँव

"फिर से गेंद में से आवाज़ आई, "हाँ। लेकिन अगले महीने के पहले रविवार तक ही यह संभव है।""

वालों के चेहरों को देखकर हो गया। हँसते-खेलते प्रेमभरे चेहरों पर आज रोष और व्याकुलता थी। शंभू चाचा जी ने भी काम पूरा करके, कुछ बोले बिना रघु को वापस भेज दिया।

"गाँव में ऐसा क्या हुआ होगा?" रघु को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह खुद के विचारों में डूबा चल रहा था, तभी उसे एक आवाज़ सुनाई दी।

"रघु, मुझे तेरे साथ बात करनी है।" पीछे घूमकर देखा तो चमकीली गेंद लेकर मोहन खड़ा था।

"अरे! यह तो वो गेंद..." रघु की आँखें चमकी।

गुनाह के एहसास के साथ, हाथ जोड़कर मोहन बोला, "हाँ, यह वही गेंद है।" उसने दिल से अपनी गलती की माफी माँगी और रघु को पूरी बात विस्तार से बताई।

रघु को गाँव के लोगों की व्याकुलता का कारण समझ में आ गया। अचानक उसे कुछ सूझा। उसके चेहरे पर वापस एक चमक आ गई।

"मोहन, आज गेंद से अपनी एक इच्छा माँगने का अंतिम दिन है न? मैंने तो अभी तक मेरी एक भी इच्छा नहीं माँगी है। चल, मैं गेंद से माँगू कि वह जेतपुर गाँव का सुख, संतोष और एकता वापस ले आए," रघु की आवाज़ में एक ग़ज़ब की प्रसन्नता थी।

रघु की बात सुनकर मोहन को आश्चर्य हुआ, "लेकिन रघु, तुम्हें अपने लिए कोई कीमती चीज़ नहीं माँगनी है?"

रघु ने हँसकर कहा, "सभी को अपना सुख वापस मिल जाए, इससे ज्यादा कीमती और क्या हो सकता है?"

उसने गेंद से इच्छा व्यक्त की, हृदय में गाँव के लोगों का मौन आशीर्वाद लेकर रघु घर की तरफ चला।

रात को झूले पर बैठकर रघु ने विस्तार से माँ को पूरी बात बताई।

माँ ने रघु को गले लगाकर कहा, "शाबाश! मेरा वीर राजकुमार।" जो बड़ा मन रखकर, खुद के सुख के बदले पहले दूसरे के सुख का सोचते हैं, वे खुद भी हमेशा सुखी ही रहते हैं। मेरे बेटे, इसी तरह सदा ही अपना मन बड़ा रखना।"

सफलता का रहस्य

मथुरा नगर में लड्डूचंद नामक मिठाईवाला था। उसकी स्वादिष्ट मिठाइयाँ नगर में बहुत प्रसिद्ध थी।
मेरी दुकान सर्वश्रेष्ठ है और सर्वश्रेष्ठ ही रहनी चाहिए। नगरवासियों को सिर्फ मेरी ही दुकान से मिठाई खरीदनी चाहिए।
जैसे-जैसे लड्डूचंद का व्यापार बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसका मन और भी ज्यादा संकुचित होता गया। ज्यादा फायदे के लिए वह तौलने में बेईमानी करने लगा।
एक सुबह,
भाई, एक किलो काजूकतली देना।
मैंने आपसे एक किलो काजूकतली के लिए कहा था। यह तो एक किलो से कम है।
लेनी हो तो लो। यह एक किलो ही है।

नहीं चाहिए तुम्हारी काजूकतली। भले ही तुम सफल हो लेकिन तुम्हारा मन बहुत ही संकुचित है। मन संकुचित रखोगे, तो सफलता टिकेगी नहीं।
वृद्धा का वचन सच हो गया। उस दिन से लड्डूचंद की दुकान में सब उल्टा होने लगा। गुलाबजामुन बहुत खट्टे हो जाते या तो बहुत मीठे। काजुकतरी और लड्डू तो इतने कड़क हो जाते कि चबाते ही दाँत तोड़ दें।
लड्डूचंद, मेरे पैसे वापस दो। यह मिठाई है या कड़वी दवाई?
सही कह रहे हो भाई। कड़वी दवाई भी इस मिठाई से अच्छी लगेगी। लड्डूचंद, दुकान का बोर्ड बदलकर दवाई की दुकान कर दो।
और इस तरह, लड्डूचंद के अधिकतर ग्राहक दूसरी दुकानों पर जाने लगे। एक साल बीत गया। लड्डूचंद की आर्थिक परिस्थिति कमज़ोर होती गई।
दिवाली के एक दिन पहले, लड्डूचंद की दुकान पर एक भी ग्राहक नहीं था।
हे लक्ष्मी देवी! मेरी मदद कीजिए। इस संकट में से बाहर निकलने का कोई रास्ता दिखाइए।

उस रात लड्डूचंद को एक सपना आया। सपने में वह एक छोटा बच्चा था। एक भव्य सिंहासन पर लक्ष्मी जी विराजमान थीं। आसपास छोटे-छोटे बच्चे उन्हें घेरकर बैठे थे।
लक्ष्मी जी सभी बच्चों को टोकरी में से सुंदर सी भेंट दे रही थीं।
यह तो कैसा जादू है?! लक्ष्मी जी का टोकरा तो खाली ही नहीं हो रहा है!
लक्ष्मी जी, आपने इतनी सारी भेंटें दीं, लेकिन आपका टोकरा तो भरा ही रहता है! ऐसा कैसे हो रहा है?
मेरे प्यारे बेटे, कुदरत का नियम है कि जो अपना मन विशाल रखता है, उसे ज्यादा से ज्यादा मिलता ही रहता है। लेकिन यदि मन संकुचित हो जाए तो फिर मिलने के दरवाज़े बंद हो जाते हैं।

अचानक लड्डूचंद की आँखें खुली। देखा तो सुबह हो गई थी।
आज मेरी आँखें सचमुच खुल गई।
नहा-धोकर लड्डूचंद लक्ष्मी जी की प्रतिमा को वंदन करने गया।
माँ, मुझे ऐसी शक्ति दीजिए कि मेरा मन हमेशा विशाल ही रहे, लोगों को देने में कभी भी संकुचित ना हो।
उस दिन, सिर्फ लड्डूचंद के भीतर ही नहीं, बाहर उसके हाथ से बनाई हुई मिठाइयों में भी परिवर्तन आया। मिठाइयाँ पहले जैसी ही स्वादिष्ट बनने लगीं।
उस दिन दोपहर को,
भाई, एक किलो काजूकतली देना।
भाई, अब आप तौलना सीख गए। आपको ज़रूर फायदा होगा।
और वृद्धा की बात फिर से सच हो गई। उस दिन से लड्डूचंद ने किसी को देने में कोई कसर नहीं की और उन्हें कभी भी नुकसान नहीं हुआ।

मीठी यादें

एक ब्रह्मचारी भाई थे। वे नए-नए ब्रह्मचर्य में शामिल हुए थे। वे सीमंधर सिटी आ गए थे।

नवरात्रि के दिन थे। सभी गरबा खेल रहे थे। गरबा खेलते-खेलते उनको अपनी पहली गर्लफ्रेन्ड याद आ गई। उन्हें ज़रा डिप्रेशन जैसा हो गया, कि मैं उसे छोड़ आया। मेरी वजह से उसकी कैसी हालत हुई होगी?

नीरू माँ को तो मेसेज पहुँच गया, कि वे भाई डिप्रेशन में हैं। उन्होंने तुरंत ही उन ब्रह्मचारी भाई को बुलाकर कहा, "अरे पगले, किसकी चिंता कर रहा है? तेरी गर्लफ्रेन्ड तो तेरे साथ ही है।" ऐसा कहकर नीरू माँ ने उन्हें अपनी तरफ इशारा किया।

फिर आगे बोले, "मैं तेरी गर्लफ्रेन्ड ही हूँ न। तू उसे जितना लव करता था, उतना लव इसे कर न।"

इतना कहकर नीरू माँ ने उनका हाथ पकड़ा और उनके साथ गरबा के ६-७ राउन्ड लिए।

फिर कहा, "नवरात्रि में तू अपनी गर्लफ्रेन्ड के साथ गरबा करता था न, तो अब इस गर्लफ्रेन्ड के साथ गरबा कर।"

यह सब देखकर उन भाई का पूरा भूत उतर गया कि, भाई अब जो भी है वह यही है। माँ कहो या गर्लफ्रेन्ड कहो, जो भी कहो।

ग़ज़ब के ज्ञानी... उनके प्रेम में तो सब लोग दुनिया भूल जाते हैं।

रियल लाइफ

स्वामी रामतीर्थ

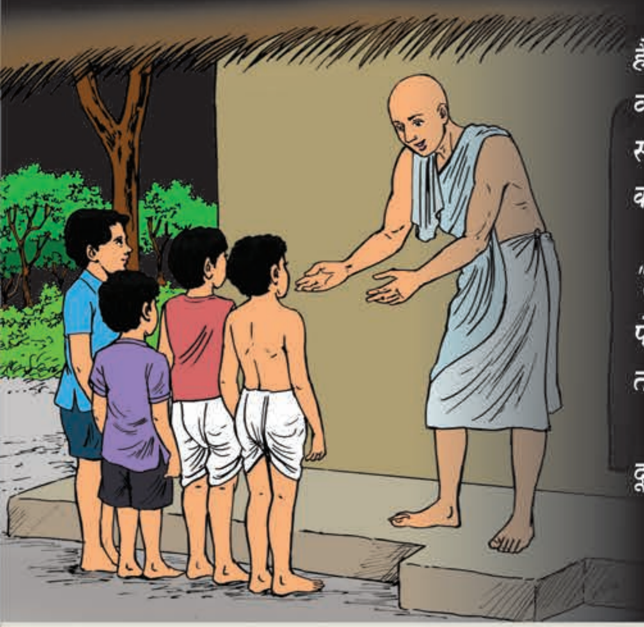

स्वामी रामतीर्थ जी के जीवन की एक बात है। एक लंबी यात्रा के बाद, रात को घर आकर स्वामी जी ने अपना खाना बनाया। उसी समय बच्चों की टोली वहाँ आ गई।

स्वामी जी को जब पता चला कि बच्चों ने खाना नहीं खाया है, तब उन्होंने अपना खाना प्रेम से बच्चों को परोस दिया। एक व्यक्ति ने यह घटना देखी। बच्चों के जाने के बाद उस व्यक्ति ने स्वामी जी से पूछा, "स्वामी जी, आपने अपना पूरा खाना बच्चों को दे दिया! अब आप क्या खाएँगे?"

चेहरे पर एक खास मुस्कुराहट के साथ स्वामी जी ने कहा, "खाने का हेतु पेट की भूख मिटाना है। फिर वह किसी का भी पेट हो, क्या फर्क पड़ता है? मेरे लिए, पाने के आनंद से पहले तो देने का आनंद अनेक गुना ज्यादा है।"

मित्रों, है न यह ग़ज़ब की बात! भूखे पेट जो खुद का खाना दूसरों को देकर आनंदित हो, वह मन कितना बड़ा कहा जाएगा!

कवि माघ

यह बात भारत के प्रसिद्ध कवि माघ के जीवन की है। माघ की आर्थिक परिस्थिति कमज़ोर थी, लेकिन उनका मन बहुत ही बड़ा था। वे अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध थे।

देर रात , एक व्यक्ति मदद माँगने के लिए आया, "मेरी बेटी की शादी है। मैं बहुत गरीब हूँ। आपके बारे में बहुत सुना है। क्या आप मेरी मदद करेंगे?"

कवि माघ का हृदय भर आया। उन्होंने घर में नज़र घुमाई, लेकिन देने लायक कुछ भी नहीं था। अचानक उनकी नज़र पत्नी के हाथ में पहने हुए कड़े पर पड़ी। पत्नी सो रही थी। लेकिन माघ को अपनी पत्नी की उदारता पर पूरा विश्वास था।

उन्होंने धीरे से पत्नी के हाथ से एक कड़ा उतारा और उस भाई को दे दिया, "बेटी की शादी के लिए मेरी तरफ से यह भेंट स्वीकार कीजिए।" तभी पत्नी की आँखें खुली और कहा, "सिर्फ एक कड़े से शादी कैसे हो पाएगी?" ऐसा कहकर उन्होंने दूसरे हाथ का कड़ा भी उतारकर उस भाई को दे दिया।

अपनी चीज़ दूसरों को देने से दूसरों को जो आनंद मिलता है, उससे अनेक गुना ज्यादा आनंद अपने को होता है!

इटली में दो गरीब दोस्त चित्रकला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए चित्रकला के एक गुरु से मिले। गुरु ने दोनों की परीक्षा ली।

दोनों दोस्त गुरु की परीक्षा में पास हो गए। लेकिन गुरु ने जब फीस की बात की, तो दोनों उदास हो गए। ऐसा नहीं था कि गुरु की फीस, गरीब दोस्त नहीं दे सकते थे। फिर भी एक मित्र बोला, "हमें आपकी फीस मंजूर है। शिक्षा कब से शुरू होगी?"

एक दोस्त की ऐसी बात सुनकर दूसरे दोस्त को आश्चर्य हुआ। बाहर आकर उसने पूछा, "इतनी फीस कहाँ से भरेंगे?" दोस्त ने जवाब दिया, "अरे!, पैसे नहीं हैं तो क्या हुआ? हाथों में बल तो है। मैं कमाऊँगा और तेरी फीस भरूँगा। तू तालीम लेकर चित्रकार बन जा। फिर तू कमाना और मुझे पढ़ाना। ठीक है न?"

दोनों दोस्त सहमत हुए। दूसरे दिन एक चित्रकला सीखने गया। दूसरा काम पर गया। दोनों दोस्त रोज़ शाम को साथ में खाना खाते। चित्रकार दोस्त के अभ्यास की चर्चाएँ होती। कुछ सालों तक ऐसा चला।

चित्रकार दोस्त ने शिक्षा पूरा की और पैसे कमाने लगा। एक दिन अपने दोस्त को लेकर वह गुरु जी के पास गया और विनती की, "गुरु जी, अब आप मेरे दोस्त को चित्रकला सिखाइए।"

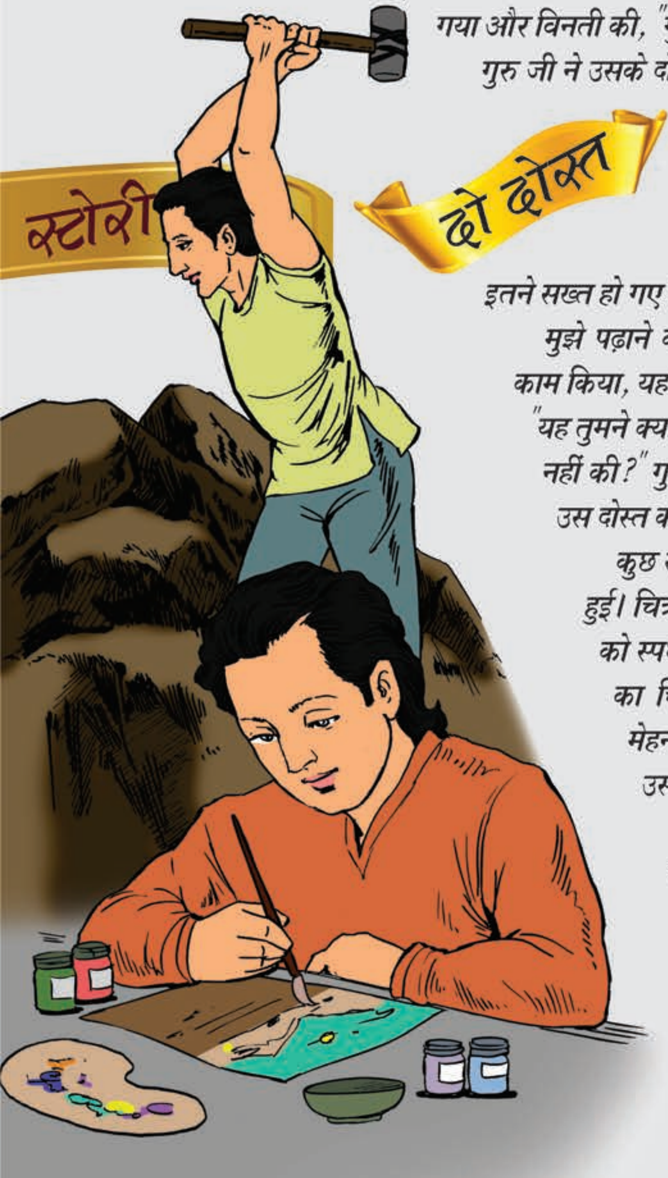

गुरु जी ने उसके दोस्त के हाथ देखे और बोले, "अब तेरा दोस्त चित्रकला नहीं सीख सकता।"

यह सुनकर चित्रकार दोस्त को आश्चर्य हुआ, "क्यों गुरु जी?"

गुरु जी ने कहा, "मेहनत करके उसके हाथ इतने सख्त हो गए हैं कि वह अब चित्र नहीं बना सकता।"

मुझे पढ़ाने के लिए, मेरे दोस्त ने पत्थर की खदान में सालों तक काम किया, यह जानकर चित्रकार दोस्त की आँखों से आँसू बहने लगे, "यह तुमने क्या किया दोस्त? मुझे पढ़ाने के लिए तुमने अपनी परवाह नहीं की?" गुरु जी को भी यह देखकर बेहद अफसोस हुआ। लेकिन उस दोस्त के हृदय में तो बहुत संतोष था।

कुछ समय के बाद, यूरोप में एक भव्य प्रदर्शनी की घोषणा हुई। चित्रकार दोस्त ने प्रदर्शनी में अपना चित्र रखा। उस चित्र को स्पर्धा में प्रथम स्थान मिला। उसमें "प्रार्थना करते हुए हाथ का चित्र" था। चित्रकार दोस्त ने अपने जिगरी दोस्त के मेहनती और कठोर हाथों का समर्पण भरा चित्र बनाया था। उस चित्रकार का नाम था "अलब्रेस्त करेर"।

देखा मित्रों, कैसा अद्भुत विशाल मन! उन दोस्तों में मेरा और पराया ऐसा भेद नहीं था। अपने दोस्त की सफलता में दूसरे दोस्त को उतना ही आनंद हुआ था, जैसे कि वह उसकी अपनी ही सफलता हो।

ऐतिहासिक गौरवगाथा

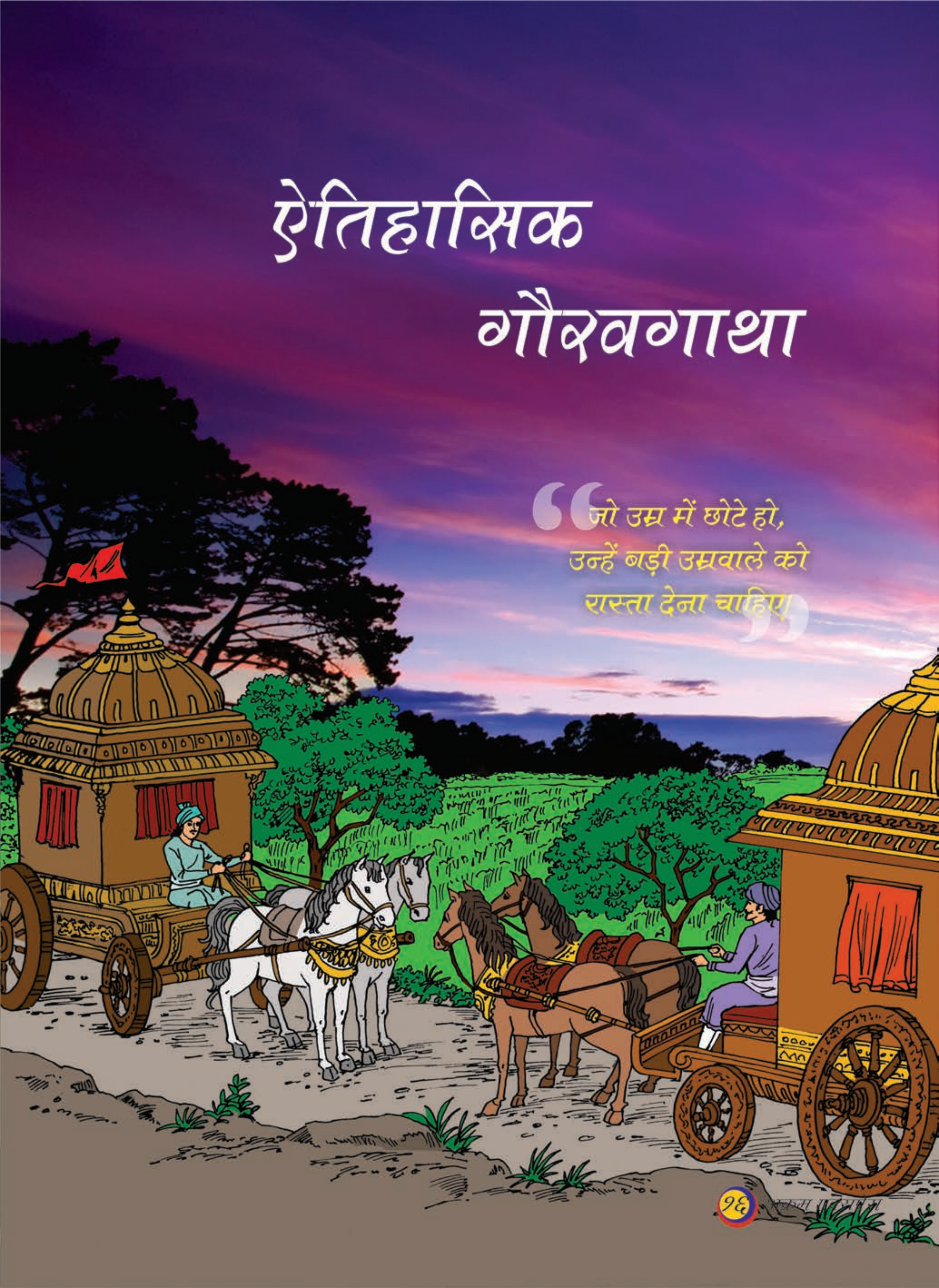

पिता जी की मृत्यु के बाद ब्रह्मदत्त कुमार वाराणसी की राजगद्दी पर बैठा। वह धर्मपूर्वक राज्य करने लगा। वह न्यायी था। वह सभी झगड़ों का समाधान निष्पक्षपाती ढंग से करता था। यदि राजा न्यायी हो तो उसके दरबारी भी न्यायी ही होंगे। परिणाम स्वरूप लोगों ने शिकायतें करना बंद कर दिया और अपने ढंग से न्यायपूर्वक व्यवहार करने लगे। राज दरबार में शिकायतें करने के लिए आनेवालों की भीड़ और धमा-चौकड़ी बंद हो गयी।

यह देखकर ब्रह्मदत्त ने सोचा कि, "मैं धर्मपूर्वक राज्य करता हूँ, इसलिए लोगों में क्लेश-कंकास तथा दुराचार दूर हो गए हैं। अब मुझे यह देखना चाहिए कि मेरे भीतर कोई दोष है या नहीं। और यदि कोई दोष दिखे, तो उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।"

ऐसा सोचकर वे अपने आसपास के लोगों से, उनके दोषों को बताने के लिए कहने लगे। लेकिन सभी उनकी तारीफ ही करते। कोई भी उनका एक दोष नहीं बताता।

इससे ब्रह्मदत्त ने सोचा कि, "शायद ये लोग इस डर से मेरे दोष नहीं बताते कि मैं गुस्सा हो जाऊँगा। अगर मैं गुप्त वेष में देश में घूमने निकलूँ, तो शायद कोई मेरा दोष बतानेवाला मिल जाए।"

ऐसा सोचकर वे रथ में बैठकर, सारथी को साथ लेकर घूमने निकल गए।

(संयोग से) ऐसा हुआ कि कोशल देश का राजा मल्लिक भी इसी तरह अपने दोष दिखानेवाले को ढूँढने के लिए, रथ में बैठकर सारथी के साथ घूमने निकला था।

दोनों के रथ एक संकरे रास्ते पर आमने-सामने आ गए। वह रास्ता इतना संकरा था कि दोनों में से एक का रथ वापस लौटे, तभी सामनेवाला रथ आगे जा सकता था।

मल्लिक राजा के सारथी ने, ब्रह्मदत्त के सारथी से रथ पीछे लेने के लिए कहा।

ब्रह्मदत्त के सारथी ने कहा, "तुम अपना रथ वापस ले लो, क्योंकि इस रथ में वाराणसी के महाराज ब्रह्मदत्त बैठे हैं।"

जवाब में मल्लिक राजा के सारथी ने कहा, "इस रथ में भी कोशल देश के महाराज मल्लिक बैठे हैं।"

दोनों रथ में राजा ही थे। अब क्या करें? ब्रह्मदत्त के सारथी ने सोचा, चलो, मैं उस राजा की उम्र पूछूँ। जो उम्र में छोटे हो, उन्हें बड़ी उम्रवाले को रास्ता देना चाहिए।

लेकिन दोनों राजा उम्र में समान ही निकले!

फिर ब्रह्मदत्त के सारथी ने सामनेवाले राजा के राज्य का विस्तार बल, धन, यश, कुल के बारे में पूछा। लेकिन दोनों राजा हर बात में समान ही निकले।

अंत में उसने सोचा कि जो राजा गुण और शील में आगे होगा, उसे दूसरे को रास्ता देना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने सामनेवाले राजा के सारथी से अपने राजा के गुण तथा शील का वर्णन करने के लिए कहा।

कोशल देश का सारथी बोला, "ये मल्लिक राजा अकड़ को अकड़ता से, मृदु को मृदुता से, सज्जन को सज्जनता से और दुर्जन को दुर्जनता से जीतते हैं। इसलिए हे सारथी! तुम वापस जाओ।"

ब्रह्मदत्त के सारथी ने अपने राजा के गुणों का वर्णन करते हुए कहा, "ये ब्रह्मदत्त राजा क्रोध को शांति से, दुर्जन को सज्जनता से, कंजूस को दान से और असत्य को सत्य से जीतते हैं। इसलिए हे सारथी! तुम वापस जाओ।"

यह सुनते ही मल्लिक राजा और उनका सारथी रथ में से उतर गए। उन्होंने घोड़ों को छोड़ दिया, अपना रथ वापस लौटाया और ब्रह्मदत्त राजा को मार्ग दिया।

FUZION 2016

फ्युज़न के दौरान विविध प्रवृत्तियों में जुड़े LMHT के बच्चे

परम पूज्य 109 वाँ
दादा भगवान का
जन्मजयंती
महोत्सव
9 से 15 नवम्बर
2016

कल्चरल शो

और चिल्ड्रन पार्क की झलक

Akram Express

December 2016
Year : 4, Issue : 9
Conti. Issue No.: 45

Date of Publication On 8th Of Every Month
RNI No.GUJHIN/2013/53111
Postal Reg. No. G- GNR-306/14-16
valid up To 31-12-2016
LPWP Licence No. CPMG/GJ/119/2014
valid up To 31-12-2016
Posted at Adalaj Post Office
on 08th of every month

अक्रम एक्सप्रेस के सदस्यों के लिए सूचना

१. आपकी वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है उसका पता कैसे चलेगा? यदि आपकी इस महीने में आई हुई अक्रम एक्सप्रेस के कवर के लेबल पर लगे हुए मेम्बरशीप नं. के बाद **#** हो तो यह आपकी अंतिम अक्रम एक्सप्रेस है। उदा. **AGIA4313#** और यदि लेबल पर मेम्बरशीप नं. के बाद **##** हो तो अगले महीने में आपकी सदस्यता समाप्त होगी। उदा. **AGIA4313##** अक्रम एक्सप्रेस रिन्यूअल की जानकारी संपादकीय पेज पर दी गई है।

२. यदि किसी महीने का अक्रम एक्सप्रेस आपको नहीं मिला हो तो नीचे दी गई माहिती फोन नं. ८१५५००७५०० पर **SMS** करें।

१. कच्ची पावती नंबर या **ID No**., २.पूरा ऐड्रेस पिन कोड के साथ, ३. जिस महीने का मैगज़ीन नहीं मिला हो, उस महीने का नाम।

Publisher, Printer & Editor - Mr. Dimplebhai Mehta on behaif of Mahavideh Foundation
Printed at **Amba offset** :- Parshwanath Chembers, Usmanpura, Ahmedabad - 14 and published